शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir
अप्रैल २०१८, संस्करण २५

हम तरह-तरह की साधनाएँ करते हैं फिर भी आत्मा की प्राप्ति कहाँ होती है ? जन्म जन्मान्तर बीत जाते है आत्मप्राप्ति कहाँ होती है ? हाँ ! गुरुमुखी होने से आत्मानुभूति बहुत सुलभ है ।

प्रिय आत्मन् ! सप्रेम जय गुरुदेव ! सिद्धमार्ग पत्रिका का पच्चीसवाँ अंक प्रस्तुत है । इस अंक में महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व शान्ति मन्दिर मगोद में दिय गए प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत हैं।

श्रीगुरुदेव

बाबाजी कहते हैं आत्मप्राप्ति कठिन है तथा सरल भी, दोनो ठीक है । शास्त्र भी कहता है, आत्मप्राप्ति बहुत दुष्कर है, हम तरह-तरह की साधनाएँ करते हैं फिर भी आत्मा की प्राप्ति कहाँ होती है ? जन्म जन्मान्तर बीत जाते है आत्मप्राप्ति कहाँ होती है ? कुछ लोग प्रचार करते हैं कि आइए, चार दिन में आत्मज्ञान प्राप्त करें । बाबाजी कहते थे, जाओ करके देखो होता है कि नहीं । चार दिन तो बहुत हो गए, चार घण्टे, चार मिनट, एक क्षण में आत्मज्ञान हो सकता है परन्तु इतनी योग्यता चाहिए । योग्यता न हो तो चार कल्प भी लग सकते हैं । हाँ ! गुरुमुखी होने से आत्मानुभूति बहुत सुलभ है । फिर तीन साल, छ: साल, बारह साल तपस्या की

क्षणभर में भी आत्मा की प्राप्ति हो जाती है । बाबाजी इस संदर्भ संत कबीर का एक प्रसंग कहते हैं कि अवतारों के पीछे लग-लग के बहुत समय खोया पर जब गुरु रामानन्द को पाया तो तुरंत पाया इस लिए जब साधना गुरुमुखी होती है तो आत्मप्राप्ति अति सुलभता से हो जाती है। बाबा मुक्तानन्दजी कहते हैं कि भगवान रामचन्द्रजी ने गुरु वसिष्ठ से पूछा आत्मानुभूति के लिए क्या अवधि है ? वे बोले हजारों जन्म लेने पर भी सहज नहीं हैं। पुनः वसिष्ठ राम को बोलते हैं – सुलभ भी है राम इतना समय लगता है जितना आँखे बंद करके उनको खोलने में लगता है। इसी संदर्भ में बाबाजी गीता का एक श्लोक कहते है – बहूनाम् जन्मनामन्ते अर्थात् जन्म जन्मान्तर में किये हुए पुण्य के अंत में मनुष्य ज्ञानियों की स्थिति में आ जाता है, पर इन में भी सब वासुदेव का है ऐसा समझनेवाले हजारों में क्वचित् होते हैं। एक अन्य प्रसंग में बाबाजी कहते हैं कि अमीर खुसरो ने अपने गुरु निजामुद्दीन की पादुकाएँ. हीरे-मोती, कपड़े इत्यादि से लदे आठ ऊँट देकर खरीदी थी । पादुकाओं में गुरु की विशिष्ट शक्ति बहती रहती है। महाराष्ट्र में एक बहुत बड़ा काव्य है - 'विसरुँ क्सा मी गुरुपादुकला ।' गुरुपादुका जो सतत् अत्यन्त याद रखने जैसी प्रतीत होती है उन्हें मैं कैसे भूलूँ ? गुरुपादुकाओं में गुरु ही निहित रहता है । संत ज्ञानेश्वर महाराज जैसे महान् योगीजी गुरुपादुकाओं का वन्दन करते थे । गुरुपादुका का स्मरण करनेवाले को गुरुपादुका दिव्यशक्ति प्रदान कर देती है। कुंडलिनी की अन्तर शक्ति विशेषरूप से गुरुपादुकाओं में बहती रहती है । इसलिए जो गुरुमुखी होकर साधना करता है तथा सदा गुरुपादुकाओं का स्मरण करता है उसे सहज ही आत्म प्राप्ति हो जाती है । य सर्व सम्प्राप्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः। अर्थात् गुरुप्राप्ति हुई तो सब कुछ प्राप्त

गुरुपादुका का स्मरण करनेवाले को गुरुपादुका दिव्यशक्ति प्रदान कर देती है। कुंडलिनी की अन्तर शक्ति विशेषरूप से गुरुपादुकाओं में बहती रहती है।

हमारे शास्त्रों में तीन प्रकार के दुःखों का वर्णन हैं। पहला है "आधिदैविक" जिसका कारण अलौकिक प्राकृतिक शक्तियाँ होती हैं, जैसे कि ग्रहों या नक्षत्रों इत्यादि की दिशा और प्रभाव। दूसरा है "आधिभौतिक" जिसका कारण वे शक्तियाँ हैं जो हैं तो अदृश्य पर उसका हम भौतिकरूप से अनुभव करते हैं – जैसे कि तूफान, बाढ़ या आग। तीसरा है "आध्यात्मिक" या स्वयं अपने पर आरोपित दुःख। यह वह पीड़ा है जिसका हम स्वयं अपने लिए निर्माण करते हैं। पूजा-अर्चना द्वारा, अनुष्ठान कर और ज्ञान प्राप्त कर हम धीरे-धीरे, इन तीनों प्रकार के दुःखों से मुक्त हो सकते हैं।

सुख की अभिलाषा साधारणतया आनन्द या आराम से की जाती है। शास्त्र कहते हैं कि इस जीवन में जिस सुख का हम अनुभव करते हैं वह तो वास्तविक सुख का बहुत छोटा-सा भाग है। यह तो ठीक वैसे ही है जैसे जब हम आइसक्रीम की दुकान पर जाते हैं और वहाँ नया स्वाद चखना चाहते हैं तब दुकानदार हमे छोटे से चम्मच में थोड़ी-सी आइसक्रीम देता है और अपेक्षा की जाती है कि उससे ही हम जान लें कि स्वाद कैसा है। इस समय जिस सुख का हम अनुभव करते हैं वह इस वास्तविक सुख के अनुभव का चम्मच भर है, अंश मात्र है।

सुख की अभिलाषा साधारणतया आनन्द या आराम से की जाती है। शास्त्र कहते हैं कि इस जीवन में जिस सुख का हम अनुभव करते हैं वह तो वास्तविक सुख का बहुत छोटा-सा भाग है।

जिसे हम जगत् करके जानते हैं, वास्तव में इन्द्रियों द्वारा अनुभूत विभिन्न पदार्थों के जगत, मन द्वारा अनुभूत भवानाओं के जगत और बुद्धि द्वारा अनुभूत विचारों के जगत का सम्मिश्रण है।

बाबाजी के सान्निध्य में वर्षों तक हम यही सुनते रहे कि यह स्वतः और सहज योग है इसलिए इसमें हमें कुछ भी नहीं करना। हमे बतलाया गया कि हम कुछ नहीं करते, गुरु ही सब कुछ करते हैं। मुझे लगता है बहुत लोगों ने इसे गलत समझ लिया है। आज भी मुझे लोग मिलते हैं जो कहते हैं,

हम संकीर्तन करते हैं, ध्यान करते हैं, अध्ययन करते हैं। इसी के साथ-साथ विस्तरण करते हैं तथा विसर्जन या लोपन अर्थात् और पकने की प्रक्रिया स्वतः ही होती रहती है।

दुकान पर जाते हैं और वहाँ नया स्वाद चखना चाहते हैं तब दुकानदार हमे छोटे से चम्मच में थोड़ी-सी आइसक्रीम देता है और अपेक्षा की जाती है कि उससे ही हम जान लें कि स्वाद कैसा है। इस समय जिस सुख का हम अनुभव करते हैं वह इस वास्तविक सुख के अनुभव का चम्मच भर है, अंश मात्र है।

जिसे हम जगत् करके जानते हैं, वास्तव में इन्द्रियों द्वारा अनुभूत विभिन्न पदार्थों के जगत, मन द्वारा अनुभूत भवानाओं के जगत और बुद्धि द्वारा अनुभूत विचारों के जगत का सम्मिश्रण है।

बाबाजी के सान्निध्य में वर्षों तक हम यही सुनते रहे कि यह स्वतः और सहज योग है इसलिए इसमें हमें कुछ भी नहीं करना। हमे बतलाया गया कि हम कुछ नहीं करते, गुरु ही सब कुछ करते हैं। मुझे लगता है बहुत लोगों ने इसे गलत समझ लिया है। आज भी मुझे लोग मिलते हैं जो कहते हैं, परन्तु जिनकी प्रकृति जड़ है – जैसे कि पत्थर। आप पत्थर को ठोकर मारें तो उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। परन्तु यदि किसी मनुष्य को ठोकर मारेंगे तो वह कह उठेगा, 'उफ़'। तो अन्तर बस इतना ही है – "उफ़" या "उफ़ नहीं" अर्थात् जड़ या चेतन। हमारे अन्तर में जो आध्यात्मिक चिंगारी कार्यशील है, वही हमे दिव्य और बुद्धिमान बनाती है।

संत कवि कबीर साहब पूछते हैं - इस शरीर में ऐसी कौन-सी महानता है ? इसकी देखभाल में हम इतना समय क्यों बिताते हैं ? हमारे देखते ही देखते एक बार फिर यह शरीर मिट्टी में मिल जाएगा। हम रहने के लिए सुन्दर महल बनाते हैं और अन्त में मिलती है हमे कब्र।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उन पाँच तत्त्वों के बारे में बताया जिनसे हम बने हैं, अर्थात् – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

हमें प्रश्न करना है – ये पदार्थ क्या हैं ? ये क्यों मिले हैं? और कैसे इनके मिश्रण से मन, बुद्धि और अहंकार या जिन्हें भगवान श्रीकृष्ण हमारी निम्न अथवा जड़ प्रकृति कहते हैं का निर्माण हुआ है ?

प्रत्येक वस्तु का आधार चेतना का सिद्धान्त है जो निरन्तर हम पर अपनी कृपा बरसा रहा है। यह चेतना ही है जो विचारों के लोक, भावनाओं के लोक और पदार्थों के लोक को धारण किए हुए है। इसके बिना इन लोकों का कोई अस्तित्त्व नहीं है।

प्रत्येक वस्तु का आधार चेतना का सिद्धान्त है कि जो निरन्तर हम पर अपनी कृपा बरसा रहा है।

फिर भगवान श्रीकृष्ण ने बतलाया कि अपने इस शरीर में हमें क्या प्रिय होना चाहिए। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ भगवद्गीता ७/५

हे अर्जुन ! तुमने जाना कि कैसे पंचतत्त्व और मन, बुद्धि, अहंकार मिलकर हमारी निम्न या जड़ प्रकृति बनाते हैं। अब तुम्हें उस उच्च 'परा' प्रकृति को जानना है जो जीवन का मूलतत्त्व है, जिसके द्वारा 'ययेदं धार्यते जगत' यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है। इस समय मैं घर में जमीन पर बैठा हुआ हूँ। इस घर को भूमि धारण किए हुए है। इस भूमि का संरक्षण स्थानीय नगरपालिका करता है। राज्य का संरक्षण राष्ट्र करता है और राष्ट्र का संरक्षण राजा करता है।

ठीक इसी प्रकार सभी तत्त्व- भूमि, वायु, अग्नि, जल, आकाश संघटित होकर एक-दूसरे को सम्बल देते हैं। इस चिदाकाश में रहनेवाले मन की अनुभूति हमारे सम्पूर्ण शरीर में होती है। वह (मन) इन पंचतत्त्वों के संसार में निवास करता है। बुद्धि की निर्णायक शक्ति मन को चलाती है। हमारे अनन्त स्थित चेतना से बुद्धि को शक्ति मिलती है और इसी के द्वारा उसे जाना जाता है। नित नए उपाय खोजते हैं पर हम उन नयी लुभावनी वस्तुओं से प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि उस समय हम इस सोच में डूबे होते हैं, कि अब आगे और क्या नया करना है। इस प्रकार हम अपने ही बुने जाल में फँस जाते

हैं। इस कारण शास्त्र कहता है, "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"। मन ही मनुष्य के मोक्ष और बन्धन का कारण है।

चैतन्य आत्मा ही सभी को धारण किये हुए है और वही निरन्तर हम पर अपनी कृपा बरसाती रहती है। यही वह चेतना का सिद्धान्त है, जो विचारों के लोक, भावनाओं के लोक और पदार्थों के लोक को सम्बल प्रदान करता है। इसके बिना इन लोकों का कोई अस्तित्त्व नहीं। भगवान श्रीकृष्ण घोषणा करते हैं कि यह उच्च चैतन्य प्रकृति ही सम्पूर्ण भासमान जगत को धारण किये है।

यही वह चेतना का सिद्धान्त है, जो विचारों के लोक, भावनाओं के लोक और पदार्थों के लोक को सम्बल प्रदान करता है।

इसलिए भगवान कहते हैं- हे सखा ! अपने सत्यस्वरूप को पहचानो, रूप को पहचानो। मैं कौन हूँ? मैं क्या हूँ? मैं चैतन्य हूँ और चैतन्य मुझसे भिन्न नहीं। यानि उन जीवात्मा और परमात्मा कि स्थिति में कोई भेद नहीं मानते। जो भी भेद है, वह माया के कारण और पंचतत्त्वों से निर्मित जीवात्मा के अपने गुणों के कारण दिखायी पड़ते हैं। बाह्य चारों ओर व्याप्त चेतना हमारे निरन्तर में व्याप्त चेतना से भिन्न नहीं है। केवल ऐसा लगता है कि भिन्नता है, इसका कारण है कि हम अपने अन्तर में उसका अनुभव इन्द्रयों, मन, बुद्धि एवं अहंकार द्वारा करते हैं किन्तु वास्तव में कोई भिन्नता नहीं है।

योग का अनुभव स्वतः सहज ही होता है "आग जलाने और चलाने का काम तो करना ही पड़ता है"। अग्नि है हमारी दैनिक साधना, प्रातः उठना, पाठ-पूजा, ध्यान करना। चलाना है अध्ययन तथा निरन्तर प्रश्न करना कि "मैं कौन हूँ? मैं क्या हूँ?"

जब हम अपने आप से प्रश्न करने लगते हैं, उस चेतना कि सत्ता को हम कैसे जाने, उसका अनुभव करें? और कैसे हम उस अनुभव में स्थित हों? मैंने दाल पकाने की बात उठायी थी, यदि हम

बाबा जी एक बात कहा करते थे कि रणांगण में योद्धा की वीरता का पता चलता है और योगी का मृत्यु में पता चलता है कि उसकी मृत्यु कैसे और कहाँ हुई है ?

उसी बात को लें तो हमें भण्डार से दाल निकालनी होगी, उसे पतीले में दाल, आग जलाना, पानी डालकर हिलाना पड़ेगा । धीमी आँच पर यह अच्छी तरह पकती है । तेज आँच से तो दाल के पकने के बजाय, जलने की अधिक संभावना होती है । हिलाते रहो । बदलाव आयेगा, परिवर्तन होता है और अन्नतः हम चेतना के उस अनुभव में स्थित हो जाते हैं । बाबाजी एक बात कहा करते थे कि रणांगण में योद्धा की वीरता का पता चलता है और योगी का मृत्यु में पता चलता है कि उसकी मृत्यु कैसे और कहाँ हुई है?

एक कथा आती है कि एक बार व्यास जी का एक शिष्य व्यास जी से पूछता है कि मेरी मृत्यु कैसे होगी ? व्यास जी ने कहा कि इसके लिए तो यमराज के पास जाना पड़ेगा । वे दोनों यमराज के पास जाते हैं वहाँ जाकर पूछते हैं कि ये मेरा शिष्य जानना चाहता है कि इसकी मृत्यु कैसे और कब होगी ? यमराज ने कहा कि इसके लिए मृत्युदेव से पूछना पड़ेगा । मृत्युदेव से पूछा तो मृत्युदेव ने कहा कि लेखा-जोखा तो चित्रगुप्त रखता है उसी से पूछना चाहिए । चारों चित्रगुप्त के पास जाते हैं । वहाँ उनके सामने प्रश्न रखा गया तो चित्रगुप्त ने नजर डाली और कहा कि लिखा तो ऐसा है कि बहुत अच्छा शिष्य है इसकी मृत्यु होनी ही नहीं चाहिए, किन्तु यदि गुरु, यमराज, मृत्युदेव, चित्रगुप्त एक साथ हो जाएँ तो उसकी मृत्यु सम्भव है और ये तो सम्भव ही नहीं है । परन्तु चित्रगुप्त उस समय उससे कहता है कि तुम्हारे एक प्रश्न ने ऐसी परिस्थिति ला दी है कि अब तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी क्योंकि ये सभी एक साथ हैं । इससे यही सीखने को मिलता है कि हमें बोलने से पहले, प्रश्न करने से पहले, उचित और अनुचित का विचार कर लेना चाहिए । इसलिए कहते हैं सब कुछ कर्म पर निश्चित है,

॥ सद्गुरुनाथ महाराज की जय ॥